'फिर लौटते हुए' उपन्यास में व्यक्त वृद्ध जीवन संबंधी नवीन दृष्टि

प्रीतिका एन.
शोधार्थी, हिंदी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
682022 केरल
मो. नं.– 9746182124
ई–मेल preethikanv1998@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय प्राचीन समाज में वृद्ध प्रायः मुखिया हुआ करते थे उनका आदर सम्मान करना पुण्य माना जाता था । वर्तमान समय में औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण तथा वैज्ञानिक प्रगति के कारण परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में भी व्यापक परिवर्तन देखने को मिलता है । मूल्य एवं आदर्श पूर्णतः बदल चुके हैं । इस बदलते मूल्य परिवर्तन ने वृद्धों को 'बेकार' कर दिया है । समाज में उनका स्थान एवं सम्मान आदि, परिवर्तन के बलि चढ़ चुके हैं । ऐसे में उनका जीवन समस्याग्रस्त महामारी के समान है, जिससे मुक्ति केवल मृत्यु ही दिला सकती है । लेकिन 'फिर लौटते हुए' जैसा उपन्यास इस विचारधारा की कटु आलोचना करता है ।

'वृद्ध', अनुभवी, ज्ञानी व्यक्ति है, जो सामाजिक व्यवस्था के प्रवर्तक एवं नींव के समान है । आज जो व्यक्ति वृद्ध है, वह बीते समय में समाज एवं परिवार का संचालक भी रहा होगा । इसलिए हम उन्हें निसंदेह सामाजिक व्यवस्था एवं संरचना की नींव कह सकते हैं । भारतीय प्राचीन समाज में वृद्ध प्रायः मुखिया हुआ करते थे लेकिन जैसे– जैसे समाज में बदलाव आते गए वृद्ध जीवन एवं उनके प्रति समाज का दृष्टिकोण भी परिवर्तित होने लगा । आधुनिक भारतीय समाज इतना अत्याधुनिक बनता जा रहा है कि, उसे सिर्फ विकास एवं उन्नति ही दिखाई देती है । प्रतिदिन बढ़ते विकासोन्मुक व्यवस्था में संबंधों एवं रिश्तों का दायरा घटता जा रहा है । इस तरह घटते दायरे में वृद्ध समाज अनावश्यक बनते जा रहे हैं, वृद्ध समाज । जिनके प्रति समाज में न पहले जैसा आदर भाव रहा न सम्मान । खोखले एवं संस्कार शून्य आज के समाज के लिए वृद्ध फालतू एवं बेकार वस्तु मात्र है । हर चीज को उपयोगिता की दृष्टि से देखने वाले समाज के लिए वृद्ध केवल अनुपयोगी एवं बेकार वस्तु मात्र है, जिनसे न समाज का कुछ भला होता है न परिवार का । डॉ. शिवकुमार राजौरिया द्वारा वृद्ध जीवन के प्रति कुछ इस प्रकार विचार व्यक्त किए हैं–"जैसे– जैसे मनुष्य अपने आपको वृद्ध मानने लगता है, वह कमजोर महसूस करने लगता है तथा सहानुभूति अर्जित करने की इच्छा रखता है । धीरे–धीरे वह परिधि की ओर जाने के लिए विवश हो जाता है । प्रायः यह देखा जाता है कि जब तक व्यक्ति परिवार के लिए कमाने का यंत्र है तब तक उसकी चलती है लेकिन जैसे ही उसका शरीर उसका साथ देना छोड़ देता है वैसे ही परिवार के सदस्यों के लिए वह एक 'बेकार चीज' बन जाता है । ऐसे में उसका अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है ।"[1]

इस प्रकार युवावस्था में मान–सम्मान एवं आदर प्राप्त करने वाला युवा वृद्धावस्था में परिवार के लिए बोझ एवं अनावश्यक होता नज़र आता है ।

इस प्रकार वृद्ध समाज का अस्तित्व निरंतर खतरे में पड़ रहा है। समाज की बदलती घिनौनी मानसिकता ने वृद्धों को अस्तित्व हीन एवं हाशियेकृत बना दिया है । इसलिए आज वृद्ध, समाज के हाशियेकृत समुदाय के प्रतिनिधि है । जिनका जीवन घोर संकटों से ग्रस्त है। वृद्ध अपने वृद्धावस्था में शारीरिक समस्याओं से ग्रस्त होते ही है, लेकिन समाज एवं परिवार के बदलते दृष्टिकोण के चलते उन्हें मानसिक तनाव, सामाजिक तिरस्कार, पारिवारिक असुरक्षा, आर्थिक अभाव आदि का भी सामना करना पड़ता है । जो उनके जीवन को कुंठा ग्रस्त एवं दिशाहीन बनाने के कारण बनते हैं । इस दिशाहीन जीवन से उन्हें केवल मृत्यु ही मुक्त करा सकती है । इस प्रकार वृद्धों के प्रति बदलती सामाजिक व्यवस्था से साहित्य भी अछूता नहीं है । इसलिए ही समकालीन साहित्य में वृद्ध जीवन की अति सूक्ष्म अभिव्यक्ति देखने को मिलती है । समकालीन साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से भिन्न यथार्थ के अधिक निकट है । तदानुसार इसे सच्चे जीवनानुभवों से युक्त साहित्य कह सकते हैं । जब बात सच्चे जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति की हो रही है तो उपन्यास साहित्य का उल्लेख करना भी जरूरी हो जाता है । कथा साहित्य के अंतर्गत उपन्यास रचना अपने विशालकाय साहित्य में कभी काल्पनिक कथा के माध्यम से तो कभी यथार्थ परक कथानक के जरिए सच्चे एवं यथार्थ जीवन स्थितियों की सटीक–सहज प्रस्तुति करता है, जो पाठकों को मनोरंजित तो करता ही है, साथ ही साथ गंभीर चिंतन मनन के लिए भी प्रेरित करता है ।

इस दृष्टि से राकेश वत्स कृत 'फिर लौटते हुए' उपन्यास भी अत्यंत विचारणीय है । प्रतिदिन बदलते वृद्ध जीवन की ओर समकालीन उपन्यासकारों ने ध्यान खींचने का प्रयास किया है । गिलिगडु, अंतिम अरण्य, रेहन पर रग्घू, दौड़, कमबख्त इस मोड़ पर, आदि उपन्यास इस प्रयास के कागज़ी अभिव्यक्ति है । लेकिन राकेश वत्स का 'फिर लौटते हुए' इस उपन्यासों से भिन्न वृद्ध संबंधी नवीन जीवन दृष्टि को प्रस्तुत करता है । राकेश वत्स हिंदी साहित्य जगत में राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त मस्तमौला स्वभाव के अनूठे रचनाकार हैं । जिन्होंने अपने अनोखे रचना कौशल से केवल उपन्यास साहित्य को ही नहीं कहानी आदि विधाओं को भी सम्पन्न एवं समृद्ध किया है । 'फिर लौटते हुए' भी इनके इसी रचना कौशल का सफल द्योतक है । अपने अनूठेपन से इस उपन्यास ने वृद्ध जीवन संबंधी नवीन सोच को सामने रखने का प्रयास किया है । हर एक वृद्ध केंद्रीत साहित्यिक कृति की तरह इस उपन्यास का आरंभ भी एक कमजोर, शरीर से शिथिल वृद्ध दिवाकर शर्मा से होता है उदाहरण स्वरूप– "दो पल बाद ही पिछली सीट पर बैठे माँ–बाप उनकी आंखों के सामने थे । पीले चेहरे, सिकुड़े हुए शरीर और आँखों में तैर रही मदद पाने की अथाह इच्छा । पिता को टैक्सी से बाहर आने के लिए भी माँ और बसंत के कंधों का सहारा लेना पड़ा ।"[2]

दिवाकर शर्मा, उपन्यास के प्रमुख पात्र के रूप में हमारे सामने आते हैं । एक कमज़ोर सा वृद्ध जिसके जीवन में अब कोई उम्मीद शेष नहीं है । अपने छोटे पुत्र बलबीर के घर से चंद्रमोहन (बड़ा बेटा) के घर आए दिवाकर शर्मा को चंद्रमोहन के तिरस्कार एवं घृणा का सामना करना पड़ता है । चंद्रमोहन के लिए उसका पिता एक असफल पिता है । जो अपनी जिम्मेदारियाँ निभाने में असमर्थ रहे । इसी सोच के चलते चंद्रमोहन एवं दिवाकर शर्मा के बीच तनाव एवं संघर्ष का माहौल देखने को मिलता है । "फर्ज़ पिता का पहले होता है बसंत और बेटे का बाद में । इनको पूछिए कि इन्होंने कौन सा फर्ज निभाया था जो हम इनके प्रति निभाएँ ।"[3] इस प्रकार दिवाकर शर्मा को कड़े तिरस्कार का सामना करना पड़ता है । अपनी पूर्व कालीन गलतियों से अवगत दिवाकर शर्मा भी अपने आप को दोषी मानता है । जो मानसिक तनाव एवं पारिवारिक संघर्ष का कारण बनते हैं । "मैं तुम्हारा मुजरिम हूँ बेटा, तुम्हारे युवा जीवन का मुजरिम । माँ–बाप जान–बूझकर तो बच्चों को कष्ट नहीं पहुँचाते, हालात ही कुछ ऐसे होते हैं जिनमें माँ –बाप भी फंसकर रह जाते हैं । फिर भी हम दोनों से अनजाने में कोई भूल– चूक हो गई हो तो उसके लिए हम तुमसे मुआफी माँगते हैं । शर्मा जी के जुड़े हुए कमजोर हाथ थर–थर काँपने लगे ।"[4] इन तिरस्कारों एवं मानसिक तनाव से मुक्ति के लिए घर त्यागने का निर्णय दिवाकर शर्मा लेते हैं । इसी निर्णय से संपूर्ण उपन्यास की काया पलट जाती है । उपन्यास का पूर्वार्ध

एवं उत्तरार्ध एक–दूसरे से बिल्कुल ही पृथक है । जहाँ पूर्वार्ध में दिवाकर शर्मा केवल एक कमज़ोर, बेसहारा बूढ़ा व्यक्ति है, वहीं उत्तरार्ध तक आते–आते दिवाकर शर्मा की छवि ही बदल जाती है । जो उपन्यासकार के वृद्ध संबंधी नवीन दृष्टिकोण की ओर इशारा करता है । घर का त्याग कर दिवाकर शर्मा अपने गाँव खानपुर चले जाते हैं । इतनी दूर पहाड़ आदि का सफर तय करने के बाद शर्मा जी को यह एहसास होता है कि, वे अपने आप को जितना कमजोर समझते थे, वास्तव में उतने है नहीं । "इस सारे सफर में एक बात से उन्हें आश्चर्य हुआ, शरीर से वे पूरी तरह से स्वस्थ रहे। शायद इसलिए की सक्रियता ने उनकी मांसपेशियों को खोल दिया और मानसिक व्यस्तता ने अकेलेपन से पैदा होने वाली खिन्नता भी हर ली ।"[5] इसी एहसास ने उनके जीवन को नई राह दी । जिस बुजुर्ग पिता के दिल के मरीज होने के संदेश से बेटा उनके चिता की फिक्र कर रहा था, वही पिता मीलों सफर कर अपने जीवन में नवीन राहों की तलाश करते हैं । इस प्रकार दिवाकर शर्मा कई स्थानों में जाते हैं, और पुराने मित्रों से मिलते हैं । जो उनके जीवन को नई ऊर्जा प्रदान करते हैं । इस बीच कई बातें एवं छोटे बेटे के धोखे आदि से भी वे अवगत होते हैं, और यह निर्णय लेते हैं कि, वे अपने उम्मीदहीन जीवन के सहारे दूसरों के लिए उम्मीद बनेंगे । यही निर्णय उन्हें समाज सुधार (सरकारी अस्पताल आदि के हालातों में सुधार करना) की ओर अग्रसर करता है । साथ ही साथ अपने कमजोरियों से लड़कर घर में अपनी खोई हुई इज्जत एवं सम्मान की पुनः प्रतिष्ठा कर बेटे द्वारा धोखे से हत्यायी गई संपत्ति को पुनः प्राप्त करने का भी प्रयास करते हैं । "दिवाकर शर्मा अपने ही घर से बेघर होकर धर्मशाला के एक कमरे में जाके टिक गए।... अपने ही घर को अपने जाबर बेटे से खाली करवाने के लिए वकीलों के दफ्तरों की खाक छानने लगे ।"[6] इस तरह अपनी लाख परेशानियों एवं समस्याओं के बाद भी दिवाकर शर्मा दूसरों के लिए उम्मीद बनते हैं । सरकारी अस्पताल के बुरे हालातों को देखकर उसे सुधारने का जिम्मा अपने बूढ़े कंधों पर लेते हैं । पहले अकेले और बाद में अपने जैसे कई वृद्धों का साथ उन्हें इस कार्य में मिलता है । "जो बात देश के युवाओं में देखनी चाहिए थी वह बुजुर्ग लोगों में दिखाई दे रही है । हो सकता है इस देश का उद्धार इन सीनियर सिटीजनों के हाथों में ही लिखा हो ।"[7] इस प्रकार राकेश वत्स द्वारा लिखित 'फिर लौटते हुए' उपन्यास के माध्यम से वृद्ध जीवन के प्रति समाज के दृष्टिकोण में अमुलचुल परिवर्तन करने का सफलतम प्रयास इस उपन्यास को विशिष्टता प्रदान करता है ।

निष्कर्ष

इस प्रकार दिवाकर शर्मा अपने जीवन को ही नहीं बल्कि कई ऐसे निस्सहाय वृद्धों के जीवन में नवीन उम्मीद का दीप जलाकर उनके जीवन को प्रकाशमा करते हैं एवं उनके जीवन में नवीन ऊर्जा का संचार करते हैं, जो अपने जीवन से थक चुके हैं । अपने उम्मीद हीन जीवन से उम्मीद को ढूंढ निकालकर वे अपने घर परिवार में खोई हुई इज्जत, सम्मान एवं स्थान को वापस हासिल करते हैं । अंत में मृत्यु से भी लड़कर एक नवजात शिशु के भांति पुनः जीवन रूपी सफर को आत्मसात करते हैं, किसी खास मकसद की पूर्ति के लिए । इस तरह उपन्यासकार ने दिवाकर शर्मा के सफर के माध्यम से वृद्ध जीवन संबंधी नवीन दृष्टिकोण को सामने रखा है । समाज द्वारा कमजोर समझे जाने वाले बुजुर्ग यदि तनावग्रस्त माहौल से बाहर निकलकर अपने जीवन में नवीन राह तलाशने का प्रयास करेंगे तो, उन्हें उनका वृद्धावस्था जीवन का अंत नहीं बल्कि नवीन आरंभ सा प्रतीत होगा, और जीवन में उम्मीद की लौ जलाने के लिए उन्हें किसी की आवश्यकता नहीं है । वे खुद ही इतने सक्षम होते हैं कि, हर एक कार्य को सफलता से पूर्ण कर अपने ही नहीं संपूर्ण समाज का संचालन फिर से कर सकते हैं । इसलिए वृद्धावस्था कोई कमजोर, शिथिल जीवनावस्था मात्र नहीं है, बल्कि वह जीवन के कटु सत्यों से अनुभव प्राप्त ऐसे जीवन की अवस्था है जो अपने अनुभव एवं ज्ञान के द्वारा एक नवीन पहल करने में समर्थ है । अपने ज्ञान के अनुभव के आधार पर वह समाज का मार्गदर्शन करने में पूर्णरूपेण समर्थ होते हैं । अतः वृद्धावस्था जीवन की अंतिम न होकर प्रौढ़तम ज्ञान की अवस्था है । अतः युवा पीढी को इस वृद्ध जीवन से ज्ञान अर्जित कर अपने जीवन को सफल बनाया जा सकता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) डॉ. शिवकुमार राजौरिया, वृद्धावस्था विमर्श और हिंदी कहानी, अद्वैत प्रकाशन, दिल्ली, 2017, शुभाशंसा से

2) राकेश वत्स, फिर लौटते हुए, राजपाल एँड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2003, पृ. 12

3) वही, पृ.32

4) वही, पृ.32

5) वही, पृ.63

6) वही, पृ.110–111

7) वही, पृ. 163